इस्लाम और इंसानी हुक़ूक़

क़ाएदे मिल्लत मौलाना सै० कल्बे जवाद नक़वी, जनरल सेक्रेट्री मजलिस उलमा-ए-हिन्द
अनुवादः सैय्यद सुफ़यान अहमद नदवी

(14)

पिछले मज़मून में ये बात पूरी तरह से साबित हो गई कि इस्लाम में जुल्म के सिलसिले में मुस्लिम या ग़ैर मुस्लिम की कोई शर्त नहीं है। यहाँ तक कि एक छोटे से परिन्दे पर भी जुल्म की इजाज़त नहीं और रसूले इस्लाम[स०] फ़रमाते हैं कि अगर ऐसा कोई अमल अंजाम दिया तो हश्र के मैदान में तुम मुझे अपना दुश्मन पाओगे। क़ुरआन मजीद में साफ़ एलान हैः अनुवादः- ''किसी क़ौम की दुश्मनी तुम्हें बेइंसाफ़ी और जुल्म पर न उभारे।'' (सूर-ए-माएदा) ख़ुद हुजूरे सरवरे काएनात मुहम्मद मुस्तफ़ा[स०] की पूरी ज़िन्दगी इस आयत की बेहतरीन अमली तफ़सीर है। तारीख़ में लिखा है कि मदीने में एक मुसलमान के घर में चोरी हो गई। दो आदमी शक की बुनियाद पर गिरफ़्तार हुए, जिनमें से एक यहूदी था और दूसरा मुसलमान। दोनों को हुजूर[स०] के पास लाया गया। मुसलमानों के दिल में ये ख़याल पैदा हुए कि अगर मुसलमान पर चोरी साबित हो गई तो मदीने के मुसलमानों की इज़्ज़त मिट्टी में मिल जाएगी और यहूदियों के सामने उनके सर शर्म से झुक जाएंगे। इसलिए कुछ मुसलमान रसूलुल्लाह[स०] की ख़िदमत में पहुँचे और अर्ज़ किया कि हम मुसलमानों की इज़्ज़त ख़तरे में है। अगर मुसलमान चोरी के इल्ज़ाम से बच जाए तो हमारी इज़्ज़त बच जाएगी। ये सुनते ही रसूल[स०] के माथे पर बल पड़ गए। रहमतुल लिल आलमीन ने फ़रमायाः ''तुम्हारी इज़्ज़त तो बच जाएगी, मगर इस्लाम की इज़्ज़त पर दाग़ लग जाएगा। आने वाले मुसलमानों ने कहाः इन यहूदियों ने मुसलमानों पर बहुत जुल्म किये हैं। अगर ये जुल्म है भी तो भी जो मज़ालिम उन्होंने हम पर किये हैं उनके मुक़ाबले में कुछ भी नहीं है। रसूलुल्लाह[स०] ने फ़ैसला करने वाले अंदाज़ में फ़रमाया कि इस्लाम जुल्म के मुक़ाबले में जुल्म हरगिज़ नहीं करने देता। हुजूरे सरवरे काएनात ने मामले की ख़ुद तहक़ीक़ की और नतीजे में यहूदी बेक़सूर निकला और चोरी का इल्ज़ाम मुसलमान पर साबित हो गया। मुसलमान को सज़ा हो गई और यहूदी बच गया। अगरचे उस वक़्त मुसलमान ये सोच रहे थे कि मुसलमानों की बेइज़्ज़ती हो गई, मगर रसूले इस्लाम[स०] की निगाहें देख रही थीं कि दीने इस्लाम के इस इंसाफ़ भरे फैसले से इस्लाम हमेशा के लिए इज़्ज़तदार हो गया। वक़्ती तौर पर मुसलमानों की बेइज़्ज़ती हुई, मगर इस्लाम का बराबरी और इंसाफ़ भरा निज़ाम क़यामत तक के लिए सबसे ऊँचा हो गया।

इसी से मिलता जुलता एक और वाक़िआ मिलता है। सिफ़्फ़ीन की जंग से वापसी पर हज़रत अली[अ०] की ज़िरह कहीं खो गई। ख़बर मिली कि एक यहूदी के पास है, मौला उस वक़्त हाकिम थे अगर चाहते तो सिपाही भेज कर ज़बरदस्ती उस यहूदी से ज़िरह हासिल कर लेते, मगर हज़रत अली[अ०] ने एक आम आदमी की तरह उस यहूदी के ख़िलाफ़ अदालत में मुक़द्दमा दायर किया। क़ाज़ी शुरैह की अदालत में मुक़द्दमा पहुँचा। एक तरफ़

एक ग़ैर मुस्लिम यहूदी है, दूसरी तरफ़ मुसलमानों के ख़लीफ़ा अमीरुलमोमिनीन अली[अ०]। क़ाज़ी शुरैह की हालत ख़राब हो गई कि अमीरुलमोमिनीन से कैसे सवालात करे, मगर हज़रत अली[अ०] ने हिम्मत बंधाई कि जो इस्लामी क़ानून चाहता है आप उस पर अमल कीजिये। अब क़ाज़ी ने पूछा कि आपका क्या दावा है? हज़रत अली[अ०] ने फ़रमाया कि इस यहूदी के पास मेरी ज़िरह है जो मैंने न इसके हाथ बेची है और न हिबा की है, हज़रत अली[अ०] की इस बात में देखने वाली बात ये है कि आपने ये नहीं फ़रमाया कि यहूदी ने मेरी ज़िरह चुराई है, बल्कि फ़रमाया कि न बेची है और न हिबा की, यानी दुश्मन की इज़्ज़त को भी महफ़ूज़ रखा। क़ाज़ी शुरैह ने यहूदी से पूछाः तुम क्या कहते हो? यहूदी ने कहाः ये ज़िरह मेरी है। अब क़ाज़ी ने हज़रत अली[अ०] से पूछा कि आपके पास कोई गवाह है? फ़रमाया नहीं।'' क़ाज़ी शुरैह ने फ़ैसला सुनाया ऐ अली[अ०] क्योंकि आपके पास कोई गवाह नहीं है और ज़िरह यहूदी के क़ब्ज़े में है, इसलिए ये ज़िरह यहूदी ही के पास रहेगी। देखने में मौला अली[अ०] मुक़द्दमा हार गए, मगर इस्लाम मुक़द्दमा जीत गया। यहूदी ने अली[अ०] के क़दमों पर सर रख दियाः ''ऐ अली[अ०] ये ज़िरह आप ही की है। मैंने चुराई नहीं है, बल्कि मुझे रास्ते में पड़ी मिली थी जो मैंने उठा ली, लेकिन इस्लाम की ये बराबरी और इंसाफ़ देखकर मैं मुसलमान हो रहा हूँ। हज़रत अली[अ०] ने वह ज़िरह उसी को दे दी और एक ख़ूबसूरत ऊँट भी तोहफे में अता फ़रमाया।

संयुक्त राष्ट्र के क़ानून हुक़ूक़े इंसानी में आर्टिकल (7) के ज़ेल में बड़े जोश के साथ लिखा है All are equel before the law क़ानून की नज़र में सब बराबर हैं। ये लिखकर समझा है कि जैसे कोई बड़ा तीर मार लिया है, लेकिन ऊपर दिये हुए दोनों वाक़िआत से साबित होता है कि इस्लाम के बराबरी और इंसाफ़ के निज़ाम में न सिर्फ़ ये कि मुस्लिम और ग़ैर मुस्लिम बराबर हैं, बल्कि हाकिम और अवाम भी एक ही जगह पर नज़र आ रहे हैं। आज बहानों-बहानों से क़ानून बनाए जा रहे हैं, ताकि बड़े-बड़े हुकूमती दर्जे और ख़ुद क़ाज़ी साहेबान अदालत में पेश होने और सवाल और जवाब से अलग हो जाए, मगर इस्लामी क़ानून ने सदियों पहले सबको बिल्कुल एक सतह पर रख कर हमेशा के लिए इस्लामी क़ानूनों की बड़ाई साबित कर दी है।

इस से पहले क़ैदियों के सिलसिले में कुछ बात हुई थी, लेकिन बात अधूरी रह गई थी। इंसानी हुक़ूक़ के ज़ैल में जंगी क़ैदियों के बारे में बहुत ताकीद है। जिनेवा कन्वेन्शन में क़ैदियों के साथ किसी भी तरह के बुरे सुलूक को सख़्ती से रोक गया है। इस्लाम ने आज से 14 सौ साल पहले जंगी क़ैदियों के बारे में तफ़सील से अहकाम बयान फ़रमाए हैं। क़ुरआन मजीद एलान फ़रमा रहा हैः ''जब काफ़िरों से मुक़ाबला हो (यानी जब वह हमला करें) तो उनकी गर्दन उड़ा दो, ताकि उनको पूरी हार हो जाए। क़ैदियों को मज़बूती से बाँध लो। बाद में चाहे उन्हें आज़ाद कर दो चाहे फ़िदया ले लो'' (सूर-ए-मुहम्मद, आयतः 4) इस आयत से अंदाज़ा होता है कि जंग के दौरान दुश्मन के आदमियों को गिरफ़्तार करने से रोका गया है, बल्कि जंग के बाद बचेखुचे सिपाहियों को गिरफ़्तार किया जाएगा। आयत में न तो क़ैदियों को क़त्ल करने को कहा गया है और न उन्हें ग़ुलाम बनाने का हुक्म है। जंग में दुश्मन के किसी भी सिपाही को क़ैदी बनाने की इजाज़त नहीं है, इसलिए सीरत लिखने वालों ने लिखा है कि अगर कोई जंग में क़ैदी बना लिया जाता था तो रसूलुल्लाह[स०] उसे आज़ाद फ़रमा देते थे।

(बशुक्रिया रोज़नामा राष्ट्रीय सहारा (उर्दू), 3 जून 2011[ई०])

(15)

हज़रत अली[अ०] और इंसानी हुक़ूक़

अगरचे अमीरुलमोमिनीन हज़रत अली[अ०] की हुकूमत बहुत थोड़ी यानी तक़रीबन साढ़े चार साल की है। लेकिन ये छोटे से ज़माने की हुकूमत भी हमारे मौजू

से बहुत ही मिलती है और इस लेहाज़ से बहुत अहम है कि आपका पहली हुकूमत के ज़माने के मुक़ाबले कई तरह की क़ौमों, मिल्लतों और मज़हबों और तरह-तरह के रंगों, नसलों और इलाक़ों से वास्ता रहा। इसी तरह से आपके दौर में सियासी और मज़हबी गिरोहों की भरमार हो गई थी, लेकिन हज़रत अली[अ०] ने इस बहुत ही परेशानी भरे और अन्दुरूनी व बाहरी मुश्किलों से भरे हुए अपनी हुकूमत के ज़माने में भी जब कि मौला ख़ुद अन्दुरूनी और बाहरी दुश्मनों से घिरे हुए थे, इस्लामी क़ानूनों के ज़रिए बनाए गए इंसानी हुकूक़ के ऐसे बेहतरीन नमूने पेश किये कि इंसानी हुकूक़ की दावेदार आज की दुनिया भी हैरत में है। अगर किसी तहक़ीक़ करने वाले को ये परखना हो कि इस्लाम ने इंसानी हुकूक़ का क्या नज़रिया पेश किया है और उसको अमली तौर पर किस तरह करके दिखाया है तो इसके लिए अली[अ०] की हुकूमत के ज़माने को देखना लाज़मी है, क्योंकि अली उस शख़सियत का नाम है जो एक अज़ीमुश्शान इस्लाम को समझने वाली भी और इंसान को समझने वाली भी है, जो ख़ुद ही पूरा का पूरा इस्लाम और इंसान का सबसे बेहतरीन नमूना है।

पिछले मज़मूनों में गुज़र चुका है, संयुक्त राष्ट्र के क़ानून हुकूक़े इंसानी का ख़ास प्वाइंट इस्लाम की अपनी इज़्ज़त और क़ीमत है, इसी बुनियाद पर क़ानून में ग़ुलामी पर सख़्ती से रोक लगाई गई है। इस मौजू पर हज़रत अली[अ०] का इरशाद मौजूद हैः- ''तमाम इंसान आज़ाद हैं और किसी को भी उन्हें ग़ुलाम बनाने का हक़ नहीं'' और अपनी इस बात को अमल की सूरत में लाने के लिए हज़रत अली[अ०] ने अपनी मुहब्बत और अपने हाथों की कमाई से हज़ार के क़रीब ग़ुलाम ख़रीद कर आज़ाद कर दिये, जिनमें ईसाई भी थे। (वसाएलुश्शीआ, जि-16 पे-30)। हजरत अली[अ०] की नज़र में सिर्फ़ उस शख़्स को हुकूमत का हक़ हासिल है जो इंसानों की इज़्ज़त व शराफ़त का ज़ाती लेहाज़ रख सकता हो, वरना वह हुकमरान नहीं वहशी दरिन्दा होगा। अपने मशहूर ख़त में मिस्र के लिए तैय किए हुए गर्वनर जनाब मालिक अशतर को लिखाः ''ऐ मालिक अपनी अवाम के साथ इंसाफ़ और बराबरी करो और उन से मुहब्बत और शफ़क़त से पेश आओ और ख़बरदार उनके हक़ में फाड़ खाने वाले दरिन्दे की तरह न हो जाना। देखो ऐ मालिक ख़ुदा की मख़लूक़ की दो क़िस्में हैं, एक वह जो तुम्हारे मुसलमान भाई हैं, दूसरे वह जो ग़ैर मुस्लिम हैं, मगर तुम्हारी तरह इंसान हैं। जानबूझकर या धोके से उनसे ग़लतियाँ हो जाती हैं। तुम्हें लाज़िम है कि उन्हें माफ़ कर दो जिस तरह से तुम चाहते हो कि तुम्हारा ख़ुदा तुम्हें माफ़ करे।'' मौला अली[अ०] ने सिर्फ़ नसीहत ही नहीं फ़रमाई है, बल्कि अमली तौर पर दूसरों की इज़्ज़त और शराफ़त की हिफ़ाज़त का सबक़ दिया है। आप सिफ़्फ़ीन की जंग से कूफ़ा की तरफ़ लौट रहे थे कि शामियान नामी एक क़बीले की तरफ़ से गुज़र हुआ। क़बीले का एक बुज़ुर्ग और इज़्ज़तदार शख़्स हज़रत के इस्तेक़बाल के लिए आया और अमीरुलमोमिनीन के एहतेराम में अपनी सवारी से उतर कर पैदल चलने लगा। हज़रत[अ०] ने उसे सख़्ती से रोका और ज़ोर दिया कि फ़ौरन अपनी सवारी पर सवार हो जाओ, क्योंकि तुम्हारे इस अमल से हाकिम को ग़ुरूर हो सकता है और ये अमल एक मोमिन की बेइज़्ज़ती की वजह बनने वाला है। (नह्जुल बलाग़ह, हिकमतः 37) इन जुमलों से अंदाज़ा होता है कि इमाम[अ०] को पसन्द नहीं था कि इंसान की इज़्ज़त को चोट पहुँचे और उसकी ज़ाती शराफ़त में कोई कमी पैदा हो।

सारे हुकूक़ में सबसे बड़ा हक़, ज़िन्दगी का हक़ है। जिसकी रिआयत करना हुकूमतों पर वाजिब और लाज़िम है और लोगों पर भी। ख़ुद हज़रत अली[अ०] की पाक सीरत इसका बेहतरीन अमली नमूना रही है। आपका मशहूर इरशाद है कि ''मुझे दो चीज़ें रसूलुल्लाह से विरासत में मिली हैं, एक अल्लाह की किताब और दूसरी वह किताब जो तलवार की म्यान में है'' लोगों ने पूछा वह किताब कौन सी है, जो तलवार की म्यान में है?

आपने फ़रमाया जो भी किसी बेगुनाह को क़त्ल करे या किसी ग़ैर मुस्तहक़ को सज़ा दे उस पर अल्लाह की लानत हो। आप[अ०] ने अपने गवर्नर मालिक अशतर को लिखाः ''देखों ख़बरदार नाहक़ ख़ून बहाने से परहेज़ करना, क्योंकि उससे ज़्यादा अल्लाह के अज़ाब से क़रीब और सज़ा के हिसाब से सख़्त कोई वजह नहीं'' आप ने फ़रमाया कि क़यामत के दिन अल्लाह की बारगाह में सबसे पहले जिन मुक़द्दमों का फ़ैसला होगा, वह ख़ून बहाने के बारे में होंगे। आपने फ़रमायाः ''ख़बरदार नाहक़ ख़ून बहाकर अपनी हुकूमत को मज़बूत मत करना, क्योंकि ये अमल हुकूमत को बेजान और कमज़ोर बना देता है, और हुकूमत बर्बाद हो जाती है और दूसरों की तरफ़ चली जाती है।''

ख़ुद हज़रत अली[अ०] की हर जंग बचाव करने वाली है। पहले अम्न की हर कोशिश कर लेते थे और उस वक़्त तक न ख़ुद तलवार उठाते थे और न फ़ौज को इजाज़त थी, जब तक दुश्मन की तरफ़ से पहल न हो जाए। इसकी बेहतरीन मिसाल ख़न्दक़ की जंग में हज़रत अली[अ०] की अरब के सबसे बड़े पहलवान अम्र इब्ने अब्देवुद से जंग है। जब अम्र मुक़ाबले पर आया तो आप[अ०] ने फ़रमाया मैंने सुना है कि तुम सामने वाले की तीन बातों में से एक बात मान लेते हो। उसने जवाब दिया हाँ ये सही है। हज़रत ने फ़रमाया, इस्लाम क़ुबूल कर लो। उसने इनकार किया। फ़रमाया सुलह क़ुबूल करके पलट जाओ। उसने इस बात से भी इनकार किया। आप[अ०] ने फ़रमाया अच्छा तो सवारीसे उतर कर मेरे सामने आ जाओ। वह मौला[अ०] के मुक़ाबले पर आ गया फिर दुनिया ने दो हैरतनाक मंज़र देखे। अली[अ०] ने फ़रमाया पहले तुम वार करो। अम्र बहुत ही मंझा हुआ बेहद ताक़तवर और अरब का सबसे मशहूर पहलवान था। उसके मुक़ाबले में हज़रत अली[अ०] बिल्कुल नौजवान थे, लेकिन बहुत बड़ा ख़तरा मोल लेते हुए उसे पहले हमले की दावत दी और अपनी जान को ख़तरे में डालते हुए इस्लामी क़ानून की बड़ाई साबित की कि इस्लाम में तहाजम नहीं बल्कि बचाव है। कुफ़्र और इस्लाम दोनों हैरत से ये मंज़र देख रहे थे। अम्र ने पूरी ताक़त से भरपूर वार किया। हज़रत[अ०] ने अपनी ढाल उठाई। अम्र की तलवार ढाल को काटती हुई मुबारक सर तक पहुँची। मौला[अ०] ने जवाबी वार किया। अम्र ज़ख़्मी होकर गिरा। मौला उसके सीने पर सवार हुए, चाहते थे कि सर काटें, मगर दुनिया ने दूसरा हैरत भरा मंज़र देखा कि अचानक अम्र के सीने से उतर कर टहलने लगे। मुसलमान घबरा गए। रसूलुल्लाह की ख़िदमत में अर्ज़ करने लगे ये अली[अ०] ने क्या किया? बड़ी नादानी का सुबूत दिया इतनी बड़े पहलवान पर क़ाबू पाकर छोड़ दिया। हुज़ूर ने फ़रमाया जब अली वापस आएं तो उन्हीं से पूछ लेना। जब अम्र को क़त्ल करके वापस आए तो लोगों ने माजरा पूछा, फ़रमाया कि उसने गुस्ताख़ी की, जिससे मुझे गुस्सा आ गया। अगर उस हालत में उसे क़त्ल करता तो ये क़त्ल अपने नफ़्स के लिए होता अल्लाह के लिए नहीं।

हज़रत अली[अ०] ने हमेशा सिर्फ़ उस हद तक जंग लड़ी, जिस हद तक ज़रूरी थी और जीत के बाद ख़ून के प्यासों को माफ़ कर दिया। हज़रत अली[अ०] की हुकूमत का ज़माना फ़िक्र की आज़ादी, बोलने की आज़ादी और अमल करने की आज़ादी का नमूना है।

(बशुक्रिया रोज़नामा राष्ट्रीय सहारा (उर्दू), 17 जून 2011[ई०])

(16)

हज़रत अली[अ०] और इंसानी हुकूक़

पिछले मज़मून में ''हज़रत अली[अ०] और इंसानी हुकूक़'' के उनवान से कुछ लाइनें लिखने का मौक़ा मिला। ज़ाहिर है कि उस मज़मून में एक हलकी सी तसवीर भी सामने नहीं आ सकी। मौजू की अहमियत को देखते हुए ये कुछ लाइनें और पेश की जा रही हैं।

पिछले मज़मून में ज़िन्दगी के हक़ के बारे में बात हुई। मौला अली[अ०] की सीरत का एक खुला हुआ पहलू इसी हक़ का एहतेराम है। जब भी दुश्मन सामने आया

आपने सुलह की भरपूर कोशिश फ़रमाई, ताकि ख़ून-ख़राबे से बचा जा सके। तारीख़ लिखने वालों ने आपकी सीरत का ये बहुत ही अजीब रुख़ पेश किया कि आप अपनी जीत पर कभी ख़ुश नहीं हुए। अली उस एक अकेले जीतने वाले का नाम है, जो जीत के बाद ग़मगीन नज़र आता था। हारने वाले को अपनी हार पर इतना अफ़सोस न होता होगा, जितना हज़रत अली को जंग में अपनी जीत पर। आप की आँखों से आँसू जारी हो जाते थे और अफ़सोस की हालत में फ़रमाते थे कि काश ये मेरी बात मान लेते और हिदायत का रास्ता क़ुबूल कर लेते और मेरे मुक़ाबले से हट गए होते तो मेरे हाथों मारे न जाते। क्योंकि रसूल[स०] पहले ही फ़रमा चुके हैं: ''मैं और अली इस उम्मत के बाप हैं'' शायद यही वजह थी क्योंकि आपकी हैसियत बाप की जैसी थी और अगर बाप अपनी नालायक़ औलाद को सज़ा देता भी है तो मजबूरी में और सज़ा के बाद शायद औलाद को सज़ा पाने पर इतनी तकलीफ़ नहीं होती, जितनी बाप को सज़ा देने पर।

फ़ौजी अफ़सर अपने कड़वे मिज़ाज के लिए मशहूर हैं। अगर लहजा बुरा, मिज़ाज सख़्त, तबीअत ग़ुस्से वाली और रहम का जज़्बा नहीं है या कम है तो ऐसा शख़्श फ़ौज या पुलिस के लिए बहुत ठीक माना जाता है, मगर हज़रत अली[अ०] ने उलटा ख़याल पेश किया है। अपने गर्वनरों को सख़्ती से कहा कि फ़ौज का अफ़सर ऐसे को बनाया जाए जो नर्म और लचीला हो, ख़ून-ख़राबे से नफ़रत करता हो, नर्मी दिखाने वाला और मेहरबान हो। मिस्र के गर्वनर मालिक अशतर को तहरीर फ़रमाया ''अपनी फ़ौजों पर ऐसे शख़्स को अफ़सर मुक़र्रर करना, जो तुम्हारे ख़याल में सबसे ज़्यादा साफ़ दिल हो, नर्मी करने वालों में सबसे अफ़ज़ल हो, देर में ग़ुस्सा आता हो, उज़्र क़ुबूल कर लेता हो, कमज़ोरों पर मेहरबान हो, ताक़तवर लोगों पर सख़्त हो। सख़्त मिज़ाज वाला न हो और कमज़ोरी की वजह से आजिज़ न हो। (नहजुल बलाग़ा नामा नम्बर-75) फ़ौज में ये सिफ़ात इसलिए ज़रूरी थीं कि हज़रत अली का हमले में पहल करना सामने वाले की फ़ौज को बर्बाद कर देना मक़सद नहीं था बल्कि सुलह की आख़री कोशिश के बाद मजबूरन बचाव के लिए जेहाद करना मक़सद था।

हज़रत अली की नज़र में इंसानी जान की बड़ी क़ीमत थी। आपकी मुकम्मल कोशिश थी कि कोई भी ख़ून बर्बाद न हो। आज अगर कोई शख़्स भीड़ में कुचल कर मर जाए तो हुकूमत पर कोई ज़िम्मेदारी नहीं होती, लेकिन मौला का फ़रमान था कि ऐसे हादसों में दियत की रक़म वारिसों को हुकूमत के ख़ज़ाने से अदा की जाएगी। इस तरह से अगर किसी मक़तूल के क़ातिल का पता न लग पाए तो दियत (तावान) की रक़म बैतुलमाल से अदा होगी। अगर क़ाज़ी अपने फ़ैसले में ग़लती कर जाए और किसी को ग़लत सज़ा मिले तो तावान की रक़म बैतुलमाल (हुकूमत का ख़ज़ाना) से अदा होगी। अगर डाक्टर की ग़लती से मरीज़ की मौत हो जाए या नुक़सान पहुँचे तो डाक्टर ज़िम्मेदार है।

इंसानी हुकूक़ में बराबरी को बुनियादी हैसियत हासिल है। मौला की हूकूमत का ज़माना इस्लामी इंसाफ़ और बराबरी का एक मुकम्मल नमूना है। इसी इंसाफ़ और बराबरी की वजह से बहुत सी अहम शख़सियतों ने इमाम का साथ छोड़ दिया और मुख़ालिफ़ीन में शामिल हो गए। हज़रत अली[अ०] ने इस्लामी क़ानून जारी करने और बैतुलमाल की तक़सीम में कभी हलकी सी भी जानिबदारी से काम नहीं लिया। रिश्तेदार-ग़ैर रिश्तेदार, सहाबी-ग़ैर सहाबी, अमीर और ग़रीब, अरब और अजम, ग़ुलाम और आज़ाद में कभी कोई फ़र्क नहीं किया। आपके सगे भाई अक़ील ने शिकायत की कि वज़ीफ़ा पूरा नहीं पड़ता है और बच्चे भूके रह जाते हैं, इसलिए वज़ीफ़े की रक़म बढ़ा दी जाए तो बच्चों की तकलीफ़ पर एक चचा की हैसियत से अफ़सोस ज़ाहिर किया, मगर वज़ीफ़ा बढ़ाने से इनकार कर दिया और फ़रमाया जितना सबको मिलता है उतना ही तुम्हें भी मिलेगा और जब भाई ने ज़िद की तो आपने एक शख़्स से कहा कि अक़ील को रात के सन्नाटे में बाज़ार ले जाओ ताकि दुकान का ताला

तोड़कर वहाँ से माल निकाल लें। अक़ील ने घबराकर कहा कि क्या चोरी करके चोर कहलाऊँ तो आपने फ़रमाया तुम भी तो मुझे चोरी की तरफ़ बढ़ा रहे हो कि मुसलमानों के माल से चुराकर तुम्हें दूँ।

बसरा के ख़िराज में मोतियों का एक हार आया। आपकी एक बेटी ने उस हार की फ़रमाइश कर दी। आपने जवाब में फ़रमाया जब तक हर मुसलमान औरत के गले में ऐसा ही हार न देख लूँ उस वक़्त तक तुम्हें ऐसा हार लेने की इजाज़त नहीं है। आपकी सगी बहन उम्मे हानी अपनी एक अजमी कनीज़ के साथ अपना वज़ीफ़ा लेने आईं। आपने अपनी बहन और कनीज़ को बराबर वज़ीफ़ा दिया। बहन ने शिकायत की कि आपने एक अजमी कनीज़ और मुझे बराबर कर दिया। आपने दोनों मुठिठयों में ज़मीन से ख़ाक उठाई और बहन से सवाल किया बताओ दोनों मुठिठयों में कौन सी मुठ्ठी अफ़ज़ल है। बहन ने जवाब दिया ख़ाक होने की हैसियत से दोनों मुठिठयों की मिट्टी बराबर है। आपने फ़रमाया तुम दोनों की पैदाईश इसी मिट्टी से हुई है, इसलिए दोनों बराबर हो। अगर कुछ बरतरी है भी तो तक़्वे की बुनियाद पर।

कुछ बुज़ुर्ग सहाबी हज़रत अली[अ०] की ख़िदमत में आए और वज़ीफ़े में बढ़ोत्तरी की दरख़्वास्त की। आपने इंकार फ़रमाया तो उन्होंने दलील दी कि हम पहले इस्लाम लाने वालों में से हैं, जंगों में भी हम ने ज़्यादा हिस्सा लिया और रसूल[स०] से रिश्तेदारी भी है। आपने नज़रें उठायीं और आने वालों की आँखों में आँखें डालकर कहा कि क्या मुझ से भी पहले ईमान का एलान किया? क्या मुझ से ज़्यादा जंगों में हिस्सा लिया? क्या मुझ से ज़्यादा क़रीब रसूल[स०] से रिश्तेदारी है? उन्होंने घबराकर कहा ऐ अली[अ०] नहीं, फ़रमाया देख सामने जो ग़रीब मज़दूर काम कर रहा है, जितना वज़ीफ़ा उसे मिलता है उतना ही मैं लेता हूँ।

आपकी राजधानी कूफ़ा में एक शख़्स ने देखा हज़रत अली[अ०] एक पुराना कम्बल ओढ़े सर्दी से काँप रहे हैं। उसने कहा ऐ अली[अ०] आप भी बैतुलमाल में से कोई अच्छा सा कम्बल ले लीजिए। आपने फ़रमाया ख़ुदा की क़सम मैंने तुम्हारे माल में से कोई चीज़ लेना गवारा नहीं की और ये चादर जो मैं ओढ़े हुए हूँ, ये भी मैं मदीने से लाया हूँ।

मालिक अशतर जैसे वफ़ादार और जाँनिसार ने एक बार दबी ज़बान से कहा ऐ अमीरुलमोमिनीन लोग आपसे दूर होते जा रहे हैं। वह आपके इंसाफ़ की ताब नहीं ला पा रहे हैं। लोगों में से ज़्यादातर लोग दुनिया को चाहते हैं। ये बहुत आसानी से अपने दीन को दुनिया के बदले बेच देते हैं। आपके दुश्मन ढेरों दौलत ख़र्च करके लोगों को अपनी तरफ़ बुला रहे हैं। आप भी अपने दुश्मनों ही की तरह माल ख़र्च कीजिए और उनको अपनी तरफ कर लीजिए। आपने सख़्ती से तम्बीह की और फ़रमाया कि मैं हरगिज़ माल के ज़रिए किसी को अपनी तरफ़ नहीं करूँगा। फ़रमाया ''अगर ये माल मेरा भी होता तब भी इन दुनिया के चाहने वालों को न देता क्योंकि ये माल पब्लिक का है।''

ये बात सामने रहे कि बैतुलमाल का यही ग़लत इस्तेमाल है कि जिसकी बुनियाद पर ग़लत हाकिमों को सख़ावत की सनदें दी जा रही हैं। सख़ावत अपने माल में होती है, दूसरे के माल में नहीं।

आज छोटे से ओहदे के लिए लोग अपना ज़मीर, शराफ़त, ईमान सब कुछ बेच देने के लिए तैयार हो जाते हैं, मगर मौला अली[अ०] का मशहूर क़ौल है कि अगर सारी काएनात की हुकूमत मेरे सामने पेश की जाए इस शर्त के साथ कि एक चींटी के मुँह से जौ का छिलका छीन लूँ तो मैं सारी काएनात की हूकूमत पर ठोकर मार दूँगा, मगर ये जुल्म करना गवारा नहीं करूँगा।

(बशुक्रिया रोज़नामा राष्ट्रीय सहारा (उर्दू), 1 जुलाई 2011[ई०])

(17)

''हज़रत अली[अ०] और इंसानी हुकूक़'' के उनवान से इंसाफ़ का तज़किरा हुआ, आज ज़बरदस्त बहस छिड़ी हुई है कि जजो को पूछताछ के दायरे में लाया जाए या

उनको इज़्ज़त के साथ इस दायरेसे बाहर रखा जाए, ज़ाहिर है कि अदालत का एक जज भी हमारी तरह का इंसान है, वह भी चाहतों का शिकार हो सकता है और जब ये ख़याल हो कि हमारे बारे में पूछताछ नहीं हो सकती तो क़दमों में लड़खड़ाहट मुमकिन हो जाती है। मजबूर होकर ख़ुद चीफ जस्टिस साहब को कहना पड़ा कि अदालतों की बदउनवानियों की कोई इन्तेहा नहीं है। मशहूर है कि कुछ जजों के क़रीबी रिश्तेदार वकील बन कर कुछ सालों में करोड़पति बन जाते हैं। अब किसी ग़रीब आदमी के लिए अदालतों में मुक़दमा लड़ना तक़रीबन नामुमकिन हो गया है। इस्लाम ने इन सभी बातों को पहले ही से बयान कर दिया है। क़ुरआन मजीद ने इन बुनियादों पर चोट की है कि जिनकी वजह से इंसान बेइंसाफ़ी करता है वह ज़ुल्म और ज़्यादती और बेइंसाफ़ी कर बैठता है। क़ुरआन मजीद के हिसाब से बेइंसाफ़ी की एक वजह अपने से और अपनों से शदीद मुहब्बत है। क़ुरआन मजीद ने एलान फ़रमायाः "ऐ ईमान वालो! बराबरी और इंसाफ़ करो अल्लाह के लिए. ... जो चाहे अपनी ज़ात या अपने माँ-बाप और रिश्तेदार ही के ख़िलाफ़ क्यों न हो।" (सूरए निसा, आयत-135) अपनी ज़ात से मुहब्बत और रिश्तेदारों की मुहब्बत ही की वजह से इंसान दूसरों के साथ बेइंसाफ़ी कर बैठता है, जिसकी काट ऊपर दी हुई आयतों के ज़रिए की गई।

दूसरी वजह इंसान का ग़ुस्से और दुश्मनी का जज़्बा है, जिसकी वजह से वह इंसाफ़ के रास्ते से भटक जाता है। ग़ुस्से और ग़ज़ब की हालत में ख़ास तौर से अगर इंसान किसी से नाराज़ है या किसी के लिए अपने दिल में दुश्मनी और अदावत का जज़्बा रखता है तो वह इंसाफ़ के रास्ते से हट जाता है और बेइंसाफ़ी कर बैठता है, इसलिए वह अल्लाह जो इंसान का पैदा करने वाला है और मुहावरे के तौर पर नहीं बल्कि हक़ीक़त में उसकी नस-नस को जानता है। वह पहले ही अपनी किताब क़ुरआन मजीद में इस बुरे जज़्बे के ख़िलाफ़ होशियार कर चुका है "ख़बरदार किसी क़ौम की दुश्मनी तुम्हें इस बात पर न उभारे कि इंसाफ़ छोड़ दो। इंसाफ़ करो कि यही तक़्वे से क़रीब है" (सूरए माएदा, आयत-8) हज़रत नूह[अ०] के बारे में एक दिलचस्प रिवायत आई है, जिससे इस मौज़ू पर रौशनी पड़ती है। रिवायत का सिर्फ़ ख़ुलासा पेश है। हज़रत नूह[अ०] ने शैतान से पूछा किः काफ़िरों, मुनाफ़िक़ों, गुनाहगारों और बदकारों को बहकाता है, ये बात समझ में आती है मगर तू मोमिनों को कैसे गुमराह करता है? अल्लाह पर ईमान रखने वाले, अल्लाह के रसूल[स०] से मुहब्बत करने वाले, सजदा करने वाले, परहेज़गार तेरे जाल में कैसे आ जाते हैं? शैतान ने जवाब दिया यही तो मेरा राज़ है, क्योंकि सबसे मुश्किल काम है मोमिन को बहकाना, लेकिन आप ने पूछा है तो बताता हूँ कि अगर मोमिन तीन ग़लतियाँ न करे तो मैं उस पर ज़ोर नहीं पा सकता। पहली ग़लती उसका ग़ुस्से में आ जाना है। जब एक बन्दा किसी की दुश्मनी या किसी और वजह से ग़ुस्से में आ जाता है तो वह अपनी लगाम मेरे हाथ में दे देता है और मैं जिधर चाहता हूँ उसे हंका ले जाता हूँ। दूसरा मौक़ा वह होता है जब उसे दो आदमियों के बीच फैसला करना हो, जिनमें से एक उसका अपना हो और दूसरा ग़ैर हो, इधर फैसले में अपने की मुहब्बत और ग़ैर की दुश्मनी असर डालती है, उधर ईमान चला और मोमिन बन्दा मेरे क़ब्ज़े में आ जाता है। तीसरी वजह जो शैतान ने बयान की है वह क्योंकि इस मौज़ू से अलग है, इसलिए छोड़ी जा रही है। आप ने देखा कि इस रिवायत में उन्हीं दो कमज़ोरियों का ज़िक्र है कि जिनके ख़िलाफ़ क़ुरआन मजीद ने ताकीद फ़रमाई है, यानी बेजा मुहब्बत और बेजा ग़ुस्सा और दुश्मनी कि जिनकी वजह से इंसाफ़ करना मुश्किल हो जाता है।

तीसरी वजह जिसकी वजह से इंसान इंसाफ़ के रास्ते से भटक जाता है, वह उसकी लालच और उसके ज़रिए रिश्वत को क़ुबूल करना है। इस बुनियाद पर भी क़ुरआन मजीद ने सख़्त हमला किया हैः "और ख़बरदार

एक दूसरे का माल नाजाएज़ तरीक़े से न खाना और न हुक्काम के हवाले कर देना कि रिश्वत देकर हराम तरीक़े से लोगों के माल को खा जाओ, जबकि तुम जानते हो कि ये तुम्हारा माल नहीं है''। (सूरए बक़रा, आयत-188) हज़रत इमाम जाफ़र सादिक़अ० ने फ़रमाया है कि फ़ैसले के लिए रिश्वत लेना अल्लाह से कुफ़्र करने की तरह है। आज की अदालतों के लिए आम तौर से शिकायत की जाती है कि वकालत कम और दलाली ज़्यादा है। इस बारे में रसूलस० की मशहूर हदीस है: ''अल्लाह की लानत हो रिश्वत लेने वाले पर, रिश्वत देने वाले पर और उस पर जो बीच में वास्ता बने'' एक जज और क़ाज़ी लिए तोहफ़े का बहाना भी नहीं चलेगा। पिछले किसी मज़मून में वाक़िआ गुज़र चुका कि रसूलस० के ज़माने में किसी रक़म वसूल करने वाले ने कोई तोहफ़ा क़ुबूल कर लिया। रसूलस० को ख़बर हुई तो उसको पैग़ाम दिया कि जिस चीज़ का तुझे हक़ नहीं है वह तू क्यों ले रहा है। उसने जवाब दिया कि अल्लाह के रसूलस० ये तो तोहफ़ा है। रसूलस० ने जवाब में फ़रमाया कि अगर तुम घर बैठे होते और मेरी तरफ़ से हाकिम न होते तो क्या तुम्हें ये तोहफ़ा मिलता। तारीख़ में है कि रसूलस० ने उस वसूली करने वाले से न सिर्फ़ ये कि तोहफ़ा वापस करवा दिया, बल्कि उसको ओहदे से हटा भी दिया। इस्लाम में एक क़ाज़ी (जज) के लिए ज़ोर दिया गया है कि वह ख़ुद ख़रीदारी के लिए बाज़ार न जाए, क्योंकि अगर किसी दुकानदार ने उसकी शख़सियत की वजह से क़ीमत में कमी कर दी तो हो सकता है उस दुकानदार का कोई मुक़द्दमा क़ाज़ी की अदालत में आए तो चाहे ना चाहते हुए ही सही, लेकिन उस दुकानदार की हमदर्दी उसके दिल में पैदा न हो जाए। इस ताकीद से अंदाज़ा कीजिए कि क़ाज़ियों और जजों के मामले में इस्लाम कितना चौकन्ना है। हज़रत अलीअ० हमेशा कोशिश करते थे कि ऐसी जगह से ख़रीदारी फ़रमाएं, जहाँ उन्हें कोई शक्ल से न पहचानता हो और यही अपने ग़ुलामों से कहते थे। आम तौर से बड़े लोगों की कोशिश होती है कि जिस जगह से सामान ख़रीद रहे हैं, वह उनको पहचान ले ताकि चीज़ भी अच्छी दे और दाम भी कम ले। ये चीज़ इस्लामी बराबरी और इंसाफ़ के ख़िलाफ़ है। इसलिए ये ज़ोर दिया गया है।

एक शख़्स हज़रत अलीअ० का मेहमान हुआ। मौला अलीअ० ने उसकी ख़ातिर की। कुछ देर बाद उसने बताया कि फ़लाँ शख़्स से मेरा झगड़ा है और आप उसका फैसला फ़रमा दें, आपने फ़रमाया तू अभी तक तो मेरा मेहमान था, मगर क्योंकि अब मुझे तेरे मुक़द्दमे का फ़ैसला करना है, इसलिए अब तू मेरा मेहमान नहीं रह सकता। मेरे यहाँ रहना छोड़ दे, क्योंकि रसूलस० का फ़रमान है कि या मुक़द्दमे के दोनों फ़रीक़ क़ाज़ी के मेहमान होंगे या कोई भी नहीं। क़ाज़ी के लिए जाएज़ नहीं कि किसी एक फ़रीक़ का मेज़बान बने, ये इंसाफ़ के ख़िलाफ़ है। किसी अदालत में मुक़द्दमा चल रहा था। एक फ़रीक़ ख़ुद हज़रत अलीअ० थे। क़ाज़ी ने जब हज़रत से बात की तो कुन्नियत (पुकारा जाने वाला नाम) से, कि ऐ अबुलहसन! और जब मुख़ालिफ़ फ़रीक़ को आवाज़ दी तो नाम लेकर पुकारा। हज़रत के चेहरे का रंग बदल गया। क़ाज़ी ने पूछा क्या बात है? आपके चेहरे का रंग क्यों बदल गया। फ़रमाया तूने इंसाफ़ नहीं किया। मुझे कुन्नियत से पुकारा और मेरी इज़्ज़त का ख़याल रखा और मेरे मुख़ालिफ़ को नाम से पुकारा, इसलिए तुम से इंसाफ़ की उम्मीद नहीं है (अरब में जब किसी की इज़्ज़त बढ़ानी होती थी तो नाम नहीं लेते थे, बल्कि कुन्नियत से पुकारते थे), अगर क़ाज़ियों, जजों और हुकूमत के ज़िम्मेदारों को कंट्रोल में रखने के लिए इस्लाम ने जो क़ानून बनाए हैं, उनकी पाबन्दी की जाए तो फिर दफ़्तरों और अदालतों से करप्शन ख़त्म करने के लिए किसी लोकपाल बिल की ज़रूरत न होगी।

(बशुक्रिया रोज़नामा राष्ट्रीय सहारा (उर्दू), 15 जुलाई 2011ई०)

(जारी)